पर्यावरण संरक्षण : प्रकृति की ओर लौटने का अनुपम वरदान

डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव,

हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग,
डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय,लखनऊ,उ.प्र.

शोध सारांश

पर्यवरण समस्या को एक ओर हम प्रदूषण के रूप में तो देख ही रहे हैं साथ ही इस समस्या को परिस्थितिकी विघटन के रूप में भी पाते हैं। परिस्थितिकी विघटन के रूप में हम वनों का विनाश, पृथ्वी से मृदा संरक्षण का अभाव, वनों–कबीलाई संस्कृति का क्षरण आदि सामने आते हैं। धरती की परत–मिट्टी– से छेड़छाड़ के द्वारा तथा वनों की कटाई के द्वारा मनुष्य ने प्राकृतिक छेड़छाड़ की शुरूआत की। विकास के क्रम में मानव ने औद्योगिक विकास की राह पकड़ी और प्राकृतिक वस्तुओं के क्षरण के साथ तमाम सारे प्रदूषकों को भी समाज में प्रतिस्थापित किया। मनुष्य ने अपने जीवन विकास क्रम मे पेड़ो का उपयोग स्वयं को सुरक्षित रखने में किया। हथियार, घर, घर का सामान बनाने के साथ–साथ उसने खाद्य श्रंखला के रूप में वृक्षों, वनस्पतियों का प्रयोग किया। वृक्षों की लगातार होती कटाई से वनों का हास तो हुआ ही साथ ही मृदा का क्षरण भी हुआ। कृषि कार्यों हेतु उत्तम स्वीकारी गई धरती की ऊपरी परत बारिश के पानी के साथ बह–बहकर नदियों और सागरों में समाने लगी। स्वयं के विकास के लिए वनों का विनाश किया साथ ही विकास की तीव्रतम दौड़ में औद्योगिक आस्थायों की भी स्थापना की।

Keywords– *पर्यवरण समस्या,परिस्थितिकी विघटन,पृथ्वी,प्रकृति,वृक्ष,वनस्पति,वरदान।*

पृथ्वी पर प्राकृतिक रूप से संतुलित जीवन के परिचालन हेतु जो परिस्थितियाँ निर्मित होती हैं। वे पर्यावरण का रूप प्रदान करती हैं। पर्यावरण को वातावरण के रूप में भी स्वीकार किया जा सकता है और इसी के आधार पर कहा जाता है कि वातावरण केवल पेड़, पौधों, नदियों, पर्वतों आदि का नाम नहीं है बल्कि वातावरण से तात्पर्य उस परिवेश से है जिसका सम्बन्ध विशुद्ध रूप से प्रकृति से आदि का चक्र निबोध गति से चलता हुआ जीवन का संचालन बनाये रखता है। प्राकृतिक वातावरण की सुन्दरता पेड़–पौधों, जीव–जन्तुओं, नदी–तालाबों, पर्वत–सागरों से बनती–बिगड़ती है। जीवन की पृथ्वी की विद्यमता इन्हीं तत्वों पर आधारित होती है। जीवन के होने में पृथ्वी के व्यापक पर्यावरण का महत्व होता है। इन तत्वों के पीछे आधारभूत पाँच तत्व–पृथ्वी, जल, आकाश, वायु, अग्नि की प्रमुख भूमिका रहती है। देखा जाये जो इन्ही पंच तत्वों की समग्रता से मानव और प्रकृति का निर्माण होता है। पर्यावरण की यही समग्रता हमारी मानवता के जीवन का आधार होती है। प्रकृति के तत्व पृथ्वी को एक सकारात्मक स्वरूप प्रदान करने के साथ–साथ मानव जीवन को भी मूल–भूत स्वरूप प्रदान करते हैं। व्यक्ति की दैनंदिनी आवश्यकताओं को पूरा करने में प्रकृति का, प्राकृतिक वातावरण का महत्व होता है। आम आवश्यकताओं की वस्तुओं की पूर्ति के साथ–साथ खाद्य पदार्थों और अन्य भौतिक वस्तुओं की प्राप्ति

भी मनुष्य प्रकृति से ही करता है। रोटी–कपड़ा और मकान की मूलभूत आवश्यकताओं से ऊपर जाकर भी मनुष्य ने स्वयं के लिए प्रकृति से बहुत कुछ प्राप्त करना चाहा। अधिक से अधिक पाने की लालसा में मानव ने प्रकृति या अंधाधुन्ध विदोहन करना प्रारम्भ किया।

मनुष्य द्वारा प्रकृति का, पर्यावरण का अंधाधुन्ध विदोहन भी एकाएक करना शुरू नहीं किया गया। सबसे आगे रहने की होड़ ने मनुष्य को वैज्ञानिक प्रगति, औद्योगिक विकास, कृषि, प्रौद्योगिकी में उन्नति की ओर अग्रसर किया। इस प्रत्येक क्षेत्र में आगे से आगे आने की लालसा में व्यक्ति ने निरकुंशतापूर्ण कदमों को उठाया। इन कदमों में उसने स्वयं थी जीवन देने वाली व्यवस्था को भी विनष्ट करने का कार्य किया। औद्योगिक विकास, वैज्ञानिक उन्नति की राह में विगत कुछ वर्षों में मानव ने प्राकृतिक संसाधनों का निर्मतापूर्वक, एवं अविवेक पूर्ण ढंग से शोषण किया। मनुष्य की असीमित, अतृप्त लालसाओं और कामनाओं ने धैर्य रखना नहीं सीखा परिणामतः उसने प्रकृति के प्रत्येक अंग–पेड़, पौधे, वनस्पति, जंगल, नदी, तालाब, पर्वत, जीव, जन्तु सभी का शोषण और जबरदस्त विदोहन किया।

प्राकृतिक संसाधन यदि एक ओर मानव जीवन की आधारभूत संरचना को तैयार करते हैं तो दूसरी ओर यही संसाधन पारिस्थितिकी संतुलन बनाये रखने में अपनी भूमिका का निर्वहन करते है। मानव द्वारा किये गये लगातार शोषण से परिस्थितिकी संतुलन में तीव्रगामी परिवर्तन देखने को मिले। इन परिवर्तनों के परिणामस्वरूप विनाशकारी अंसुतलन दिखाई देने लगा। बाढ़, सूखा, महामारी, ग्लोबलवार्मिग, ओजोन परत का क्षरण, अन्य नई–नई बीमारियों या जन्म, भूस्खलन, जलवायु परिवर्तन आदि ऐसी समस्याएँ हैं जो नई सदी की मानवता को बारम्बार देखने को मिल रहीं हैं।

औद्योगिक विकास के चरण में नये–नये उद्योगों की स्थापना की गई। उद्योगों की स्थापना ने मानव विकास के तो आयाम दिये किन्तु प्राकृतिक विनाश के भी रूपों को उत्पन्न किया। विभिन्न प्रकार के प्रदूषकों से जल, वायु, मृदा प्रदूषित हुए साथ ही औद्योगिक मंत्रों के शोर से ध्वनि प्रदूषण की विभीषिका भी सामने आने लगी। भौतिकता की दौड़ और तकनीक के अंधाधुध विकास ने जल संसाधनों को खतरे में डाला, उद्योगों के कचरे ने मिट्टी की उर्वरता को समाप्त किया। इसके साथ ही नये–नये उद्योगों की स्थापना ने नाभिकीय प्रदूषण, रेडियोधर्मी प्रदूषण, जहरीली गैसों आदि को भी मानवीय समाज के बीच पहुँचाया। इस तरह के प्रदूषकों ने रेडियोधर्मी बीमारियाँ, त्वचारोग, श्वास सम्बन्धी रोग, अम्ल वर्षा, जैसी स्थितियाँ पैदा कीं।

मानव के विकासक्रम में इस प्रकार की स्थितियाँ का उत्पन्न होना स्वाभाविक ही था। इसी के साथ–साथ बढ़ती जनसंख्या ने भी पर्यावरण को प्रभावित करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। प्रकृति के लगातार विदोहन के पश्चात् संसाधन सीमित दिखने लगे उस पर बढ़ती जनसंख्या ने विभीषिका का रूप धारण किया। संसाधनों की सीमितता, बढ़ती जनसंख्या, उपभोक्तावादी संस्कृति की प्रवृत्तियों ने मानवीय जीवन शैली को अप्राकृतिक और प्रदूषणमुक्त बना दिया। भौतिक सुखों की तीव्तम अंधी दौड़ में मानव ने प्रकृति का तो ध्यान रखा ही नहीं साथ ही वर्तमान में प्रदूषण के कारण जन्मी विभिन्न परेशानियों से भी कुछ सीखने का प्रयास नहीं किया। विविध प्रकार की उपभोग की गई सामग्री के कारण भी मानव अपने आसपास के वातावरण को जाने–अनजाने में प्रदूषित करता रहता है। फ्रिज, एसी, कार, माइक्रोवेव आदि अत्याधुनिक घेरलू संयंत्र भी मानव को सुविधाएँ प्रदान करने के साथ–साथ प्रकृति को नुकसान पहुँचाने में लगे हैं। क्लोरो फ्लोरो कार्बन, नाइट्रस आक्साइड, मीथेन, कार्बनडाई आक्साइड आदि गैसें पृथ्वीं को

गर्म करने के लिए उत्तरदायी हैं। इस बढ़ते धरती के तापमान के लिए ग्रीन हाउस इफैक्ट को कारक माना जाता है। इन गैसों के लगातार, वायुमण्डल के अनेक वायुदाब मण्डलों को प्रभावित किया है। क्षोम मण्डल, समताप मण्डल आयन मण्डल के साथ ओजोन मण्डल का सर्वाधिक ह्रास हुआ है। सूर्य की पराबैगंनी किरणों को रोकने का कार्य ओजोन परत के द्वारा होता है। वायुमण्डल में 30 किमी से 60 किमी तक की दूरी में इस मण्डल की उपस्थिति स्वीकारी गई है।

ओजोन परत के क्षरण को भी पृथ्वी के बढते तापमान का कारण माना जा रहा है। विश्वव्यापी बढ़ती ताप समस्या के संदर्भ में संयुक्त राष्ट्र संघ की अपनी समिति ने एक रिपोर्ट में अपने निष्कर्ष देते हुए कहा था'' आगामी वर्षों में विश्व के औसत तापमान में प्रति दशक 0.3 प्रतिशत की वृद्धि होगी और इस दर से सन् 2100 तक पृथ्वी का तापमान 3.6 डिग्री सेल्सियस और बढ़ जायेगा।'' इसी तरह अमेरिका की प्रतिष्टित संस्था EPA का कहना है। कि तापमान में 4 डिग्री की वृद्धि से वाष्पीकरण में 30 से 40 प्रतिशत तक की वृद्धि सम्भावित है। इससे विशेषकर एशिया और अफ्रीका के अर्द्ध– शुष्क प्रदेशों पर काफी खतरनाक प्रभाव पड़ेगा। इसके प्रभाववश पानी और पशुचारे की भीषण समस्या उत्पन्न हो जायेगी।

विकास की अंधानुतन अंधी दौड़ और भौतिक सुखों की लालसा में मानव को भयानकता की हद तक उद्दण्ड बना दिया है। पर्यावरणीय क्षति और उसके दुष्परिणामों को जानने समझने के बाद भी मानव ने अपने विनाशकारी कदमों को रोकने का प्रयास नहीं किया है। वायु, जल, ध्वनि जैसे प्रदूषणों के साथ उसने रेडियोधर्मी प्रदूषण को भी जन्म दिया। रेडियोधर्मिता की खोज फ्रांस के हेनरी वैकरल ने सन् 1896 में की थी। बींसवी सदी के शुरूआती दौर में इस तत्व की खोज को क्रान्तिकारी स्वरूप प्रदान किया गया। क्यूरी दम्पत्ति ने रेडियोधर्मी पदार्थ रेडियम का पता लगाया तो जैसे रेडियोधर्मी पदार्थों की खोज का सिलसिला चल पड़ा। एल्फा, बीटा, गामा किरणों ने प्रकीर्णित होकर मानव को चमत्कृत किया और विविध एटमी हथियारों की परिकल्पना का निर्माण किया। रेडियोधर्मी पदार्थों के प्रयोगों से नाभिकीय ऊर्जा को उत्पन्न किया जाने लगा और मानव ने इसे अपनी सर्वाधिक उन्नत खोज बताया। प्राकृतिक ऊर्जा के समाप्त होते जा रहे भंडारों से हैरान–परेशान मानव के लिए नाभिकीय ऊर्जा संबल प्रदान करने वाली थी।

परमाणु ऊर्जा के प्रयोग ने मानव को महामानव की श्रेणी में खड़ा कर दिया। रियेक्टरों में नित नये–नये स्वरूपों का निर्माण होने लगा, जिससे रेडियोधर्मी पदार्थों के द्वारा अधिकाधिक शक्ति प्राप्त करने की तृष्णा का भी विकास हुआ। वैज्ञानिक परीक्षकों और परिणामों से रेडियोधर्मी पदार्थों के नये प्रयोग और स्वरूप सामने आये किन्तु प्रदूषण या भयंकर खतरा भी मानवता पर मडराने लगा। रेडियोधर्मी प्रयोगशालाओं से निकले प्रदूषकों से रेडियोधर्मी पदार्थ धूल, पानी में घुलने लगे। इस प्रकार से किसी न किसी रूप में रेडियोधर्मी पदार्थ आसानी से हमारी भोजन श्रंखला में समाहित होते रहे। वैज्ञानिक परीक्षणों से देखने में आया है। कि जल या मृदा में रेडियोधर्मी पदार्थ की जितनी मात्रा होती है इससे हजारों गुना रेडियोधर्मी पदार्थ मछली अथवा बत्तख के द्वारा भोजन के रूप में हमारे शरीर में जाता है, जो रेडियोधर्मी मृदा अथवा जल का उपयोग करती हैं। रेडियो धर्मी पदार्थों के द्वारा, प्रदूषण फैलाने की भयावह स्थिति को हम हीरोशिमा और नागासाकी के परमाणु–विस्फोट के रूप मे भी देख सकते हैं। इसके साथ–2 भयावहता का एक स्वरूप यह भी देखने को मिलता है कि अमेरिका में रेडियोधर्मी क्षेत्र के आसपास रहने वाले लोगों में एक माँ के दूध में वायुमण्डल की अपेक्षा कई गुना अधिक रेडियोधर्मी

पदार्थ मिलता है। रेडियोधर्मी पदार्थ हमें एक ओर ऊर्जा, शक्ति तो प्रदान कर रहे हैं वहीं दूसरी ओर हमारे जीवन–चक्र को बुरी तरह से प्रभावित भी कर रहे हैं। भोजन चक्र के माध्यम से, श्वसन क्रिया के माध्यम से अथवा अन्य किसी भी रूप में रेडियोधर्मी पदार्थ हमारे शरीर में प्रवेश करके माँसपेशियों, हड्डी के विविध रोगों, विभिन्न ग्रन्थियों को कमजोर कर उनकी क्षमताओं को प्रभावित कर रहे हैं।

वर्तमान वैज्ञानिक, तकनीक, प्रौद्योगिक, कृषि, औद्योगिक विकास ने मानवीय विकास की अवधारणा को पुष्ट किया है साथ ही मानवीय चेतना पर सवालिया निशान भी लगाये हैं। देखा जाये तो मानवीय विकास का प्रत्येक चरण प्रकृति के रास्ते से ही होकर निकला है। अभर्यादित और विध्वंसपूर्ण ढंग से होते विदोहन के परिणामस्वरूप प्राकृतिक सम्पदा लगातार समाप्ति की ओर जा रही है। मनुष्य द्वारा इस प्रकार के कोई भी प्रयास सकारात्मक स्वरूप प्राप्त करते नहीं दिखाई देते हैं जो पर्यावरण संरक्षण के प्रति उसकी संचेतना को दर्शाते हों। प्राकृतिक सम्पदा की सबसे बड़ी घरोहर कहे जाने वाले वनों का लगातार ह्रास जारी है। यदि गौर किया जाये तो वनों की निरन्तर होती कटाई से पेड़–पौधे–वनस्पतियों का ह्रास तो हो ही रहा है साथ ही अनेक प्रकार के दुर्लभ जीव–जन्तुओं के अस्तित्व पर भी खतरा मडराने लगा है। आँकड़ों के अनुसार 1990–2000 के दशक में पृथ्वी से 940 लाख हेक्टेयर के बराबर हरे–भरे वृक्षों को मनुष्य ने समाप्त कर दिया है। इस वन सम्पदा के विनष्ट होने का परिणाम यह निकला कि पेड़–पौधों, जीव–जन्तुओं की कुल प्रजातियों में से लगभग ग्यारह हजार प्रजातियां विलुप्त हो चुकी हैं अथवा विलुप्त होने की कगार पर हैं।

वन–सम्पदा के विनाश ने पेड़–पौधों, जीव–जन्तुओं के अस्तित्व पर संकट खड़ा किया तो वहीं स्वयं मानव के जीवन पर भी संकट पैदा किया। शहरों में नित पेड़–पौधों की होती आ रही कमी ने स्वच्छ प्राणवायु का घोर अभाव पैदा किया है आज भी चिकित्सा विज्ञान के उत्तरोत्तर प्रगति करने के बाद भी विकासशील देशों में प्रतिवर्ष लगभग 50 से 60 लाख तक मनुष्य प्रदूषित वायु के कारण हुई बीमारी से मौत के शिकार हो रहे हैं।

आज कोई एक देश मात्र ही पर्यावरण संकट से, अथवा प्रदूषण की समस्या से नहीं जूझ रहा हैं। समूचे विश्व के सामने एक प्रकार का संकट आ खड़ा हुआ है। जो पल प्रतिपल इंसान के सामने कठटकारी प्रभाव उत्पन्न कर रहा है। विश्व पटल पर आये दिन होने वाली घटनाएं भी हमें इस रूप में प्रभावित करती हैं कि, उत्तरी ध्रुव में बर्फ के पिघलने की धटना, हिमालय के ग्लेशियरों का अपने स्थान से सरकना, उत्तरी अमेरिका के ठंड के दिनों के औसत तापमान में बृद्धि की घटनाएँ कहीं न कहीं हमारे प्राकृतिक संसाधनों से छेड़छाड़ का दुष्परिणाम हैं।

ऐसा नही हैं कि अंधाधुन्ध आधुनिकता और भौतिकता की दौड़ में भागता मानव पर्यावरण संरक्षण के प्रति कुछ कर नहीं रहा है। सरकारी स्तर पर प्रयास जारी हैं, विश्व पर्यावरण दिवस और पृथ्वी दिवस जैसे कार्यक्रमों का आयोजन होता रहता है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर वैश्विक चर्चा होती रहती है जो समूची मानव जाति को पर्यावरणीय संकट से मुक्त करवाने की दिशा में प्रयत्नशील दिखती है। इसके बाद भी पल–प्रतिपन्ल ऐसा एहसास होता है कि ऐसे आयोजन, ऐसे दावे, पर्यावरण संरक्षण की चिंताएं कागजों पर वाद–विवादों में गोठिठयो, सम्मेलनों में समाराहों में दिखाई देते हैं, कुछ भाषणो, कुछ योजनाओं और कुछ नारों के माध्यम से विश्वजनमत पर्यावरण संरक्षण चर्चा करता हुआ बाहर आता है और बाहर आकर वही रौद्र रूप दिखाई देने लगा है। यह अपने आप में हास्यास्पद है कि ओजोन परत के क्षरण की चर्चा

होती है, ग्लोबल वार्मिंग को लेकर विश्व व्यापी चिन्ता की जाती है किन्तु सभी के विचार आते हैं तो एयर कंडीशन कमरों में बैठकर, प्लास्टिक की सील बन्द बोतलों का पानी पीकर।

सवाल यह उठता है कि पर्यावरण संरक्षण की बात हम कर रहे हैं किन्तु पर्यावरण संरक्षण के लिए प्रयास क्यों नहीं कर रहे हैं? पर्यावरणीय संकट जिस प्रकार से हमारे सामने आ खड़ा है उससे मानवीय समस्या किसी भी रूप में अनजान नहीं है किन्तु इसके बाद भी संरक्षण के प्रयास अथवा उपाय मूलभूत रूप में नहीं किये जा रहे हैं। देखा जाये तो पर्यावरण संरक्षण के लिए हमें आधारभूत संरचना तैयार करने होगी। सरयारी स्तर पर सन् 1972 ई0 के रियोडिजेनेरो के पृथ्वी सम्मेलन से सम्मेलनों की परम्परा तो शुरू हुई किन्तु ये सम्मेलन भी आपसी खींचतान, वाद–विवाद के केन्द्र बिन्दु बने रहे। पर्यावरण संकट का हल सुझाने से ज्यादा महत्वपूर्ण यहाँ एक दूसरे पर दोषारोपण करना रहा। विकसित राष्ट्र स्वयं को अपराधी अथवा दोषी की श्रेणी में मानने को तैयार नहीं थे। वे पर्यावरण के वैश्विक संकट के लिए विकासशील देशों को ही दोषी ठहराने मे लगे रहे।

पर्यावरण संरक्षण की दिशा में विकसित राष्ट्रों द्वारा ग्रीन हाउस इफैक्ट को प्रभावी करने वाली गैसों तथा कार्बन की कटौती पर सहमति नहीं दी गई, भले ही इसका प्रभाव अम्लीय वर्षा, ओजोन परत के क्षरण के रूप में सामने आता रहा है पर्यावरण संकट दिन–प्रतिदिन गहराता जा रहा है, पर्यावरण संरक्षण हेतु लगातार प्रयास भी किये जाते रहे हैं, वैश्विक स्तर पर धरती को, पर्यावरण को बचाने के प्रयास जारी रहें इसके बाक्जूद भी परमाणु परीक्षण किये जाते रहे, युद्धों का संचालन जारी रहा, समुद्रों में कचरा का बहाया जाना अनवरत रूप से होता रहा, पशु–पक्षियों, दुर्लभ पशु–पक्षियों का शिकार भी किया जाता रहा।

मानव की, विकसित राष्ट्रों की इस हठधर्मिता के बाद भी पर्यावरण संरक्षण के प्रति जो छोटे–छोटे कार्य होते दिख रहे हैं वे आशान्वित करने वाले हैं। WWF, ग्रीनपीस, वर्ल्ड मंच फोरम जैसी संस्थाएं बहुत हद तक प्रभावी भूमिका का निर्वाह कर रही हैं। इन संगठनों के कार्यों और प्रयासों से पर्यावरण संरक्षण के प्रति सकारात्मकता आई है। पशु–पक्षियों, पेड़–पौधों के संरक्षण के साथ–साथ व्हेल मछली के शिकार को रोकने आदि में इन संगठनों की सराहनीय भूमिका का नकारा नहीं जा सकता है। उत्तरांचल का चिपको आन्दोलन, केरल की साइलैंट वैली को बचाने की मुहिम, शाकाहार प्रचार का आन्दोलन, ब्राजील के बरसाती वनों को बचाने के प्रयास आदि सराहनीय हैं। इसके अतिरिक्त छोटे–छोटे समुदायों द्वारा भी जीव–जन्तुओं और पेड़–पौधों को संरक्षण प्रदान किया जा रहा है। राजस्थान के काले हिरणों के शिकार का विरोध और काले हिरणों का संरक्षण वहां के विश्नोई जनजाति के लिए सामाजिक मर्यादा का प्रश्न बन गया था। चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय के नाना जी देशमुख का वनस्पतियों के संरक्षण का प्रयास करने आप में सराहनीय है। इस प्रकार के प्रयास चाहे वे वैश्विक स्तर पर हो रहे हों। अथवा भारत देश के स्तर पर किसी न किसी रूप में सकारात्मकता को दर्शाते हैं।

इस प्रकार के सकारात्मक प्रयासों के बाद भी पर्यावरणीय संरचना को देखने पर लगता है कि अभी भी पर्यावरण संरक्षण में कहीं न कहीं कुछ कमी सी दिखाई दे रही है। भारतीय पर्यावरण–विदों के साथ–साथ विश्व के तमाम पर्यावरण–विदों को एक साथ जुटना पड़ेगा। एकत्र प्रयासों के स्थान पर समग्र प्रयास करने की आवश्यकता है। इसके लिए सरकारी एंजेसियों, संगठनों, गैर स्वयं सेवी संगठनों, अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों को आधारभूत स्तर पर ठोस प्रयास करने पड़ेंगे। पर्यावरण संरक्षण के आधारभूत प्रयासों को

हम अपने वैदिक संस्कारों मे देख सकते हैं वहाँ जीव–जन्तु, पेड़–पौधों, वनस्पतियों में देवताओं का वास स्थापित कर उन्हें पूज्य माना गया। पेड़–पौधों की, नदियों की पूजा–अर्चना करने की परम्परा के पीछे उनके संरक्षण करने की भावना निहित थी। हमें एक बार फिर पर्यावरण सरंक्षण के लिए प्राचीन पारम्परिक पद्वति को आधार बनाकर सांगठनिक रूप में समवेत प्रयास करने होगें। यह तो सत्य है कि बिना आधारभूत ढाँचे को साथ लिए किसी प्रकार के पर्यावरणीय बदलाव की आशा करना व्यर्थ है।

पर्यावरणीय संरक्षण के प्रति तथा पर्यावरणीय जागरूकता के लिए बाल्यकाल से ही पर्यावरण के प्रति लोगों को सचेत करना पड़ेगा। विद्यालयीन पाठ्यक्रमों में पर्यावरण शिक्षा को अनिवार्य रूप से शामिल किया जाना चाहिए। न्यायालय के कदम के बाद अधिसंख्यक रूप में इसका पालन किया जा रहा है किन्तु अभी भी पर्यावरण शिक्षा को एक औपचारिकता मानकर पढ़ाया जा रहा है। शिक्षा के प्रत्येक चरण में पर्यावरण शिक्षा को एक व्यापक स्वरूप में पढ़ायें जाने की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त स्थानीय निवासियों को भी उनके आसपास के वातावरण के प्रति सचेत करने, उसकी जानकारी देने; उसके संरक्षण के प्रति जागरूक किये जाने की आवश्यकता है। विद्यालयीन पाठ्यक्रमों में पर्यावरण शिक्षा के अनिवार्य किये जाने के साथ ही साथ स्थानीय स्तर पर भी व्यापक प्रयास किये जाने की आवश्यकता है। इसमें कुछ उपाय निम्नवत हैं जिनको अपनाने में हम पर्यावरण के प्रति अपने दायित्वों की पूर्ति किसी न किसी रूप में तो कर ही सकते हैं।

खाली पड़ी बेकार जमीन पर, सड़कों, रेलवे लाइन के किनारे की बेकार जमीन पर, खेतों, के किनारों पर तथा आवासीय परिसरों में हरियाली अथवा वृक्षारोपण किया जाये। इससे एक बड़े भूभाग में वृक्ष, हरियाली को पैदा किया जा सकता है। खेती में कम से कम रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग किया जाना चाहिए। रासायनिकों का कम से कम प्रयोग वनस्पतियों को खाद्य सामग्री को प्रदूषण से हानिकारक तत्वों से बचाया जा सकता हैं। इसके अतिरिक्त यह भी प्रयास किये जाने चाहिए कि जल विकास की स्थिति ऐसी हो जो पेयजल को दूषित न करें। सड़े–गले खाद्य पदार्थो को, अन्य पदार्थों को इधर–उधर बिखरा कर फैलाने से वातावरण तो प्रदूषित होता है, ये पदार्थ भी जहाँ–जहाँ जाते हैं वहाँ के वातावरण, पेयजल, खाद्य सामग्री को प्रदूषित करते जाते है इसके परिणामस्वरूप हमारी भोजन श्रंखला भी प्रदूषित होती है। अच्छा हो कि ऐसे अवशिष्ट पदार्थों को जमीन में गाड़ दिया जाये और इनका प्रयोग खाद के रूप में किया जाये। पर्यावरण के प्रति सुरक्षित सामग्री (Eco friandly) का अधिकाधिक प्रयोग करने पर जोर दिया जाना चाहिए। इस नाते हमें सबसे पहले प्लास्टिक के प्रयोग को लगभग समाप्त करना होगा। पालीथीन, प्लास्टिक पर्यावरण का सबसे बड़ा शत्रु है।

ऊर्जा पर्यावरण के लिए आवश्यक है, ऊर्जा संरक्षण के द्वारा हम किसी न किसी रूप में प्राकृतिक ऊर्जा के संसाधनों को संरक्षित करने का कार्य करते हैं। इसके लिए प्रयास यह होना चाहिए कि एक आवश्यकता पड़ने पर ही पेट्रोलियम पदार्थों का प्रयोग करें और उन्हें दुरूप्रयोग होने से बचायें। इसके अतिरिक्त हमारा प्रयास यह भी हो कि जितना संभव हो सके हम ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोतों का सहारा लें। सौर ऊर्जा को जन–जन तक पहुँचाने की आवश्यकता है। पर्यावरण के विविध अंगों के प्रति आम आदमी की जिम्मेदारी का उसको एहसास कराना आवश्यक है।इसके लिए रोजमर्रा के कार्यों हेतु हमें प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग पर बल देना होगा। वारिश के पानी का उपयोग कृषि कार्यों

हेतु करने को कृषकों ग्रामीणों को प्रोत्साहित करना पड़ेगा।

आम जनमानस को इस बात का एहसास कराना आवश्यक है कि पर्यावरण किसी और के लिए नहीं स्वयं सभ्यता के लिए आवश्यक है। इसके प्रति हमारी जागरूकता स्वयं हमें ही लाभान्वित करेगी। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि हमें प्रकृति की ओर लौटना होगा। इसका अर्थ कदापि यह न लगाया जाये कि मनुष्य को गुफाओं, कंदराओं में जीवन व्यतीत करना चाहिए कंद–मूल फल खाकर गुजारा करें; पेड़ की छाल अथवा पत्तों के वस्त्र बना ले वरनू इस बात का तात्पर्य इस तरह लगाना चाहिए कि अकारण पर्यावरणीय घटकों का नुकसान न किया जायें। प्रकृति का संरक्षण व्यक्ति की प्राथमिकता होनी चाहिए। वही विकास सत्त विकास कह लायेगा जो पर्यावरण जो पर्यावरण, प्रकृति के अनुकूल हो। प्रकृति विरूद्ध कार्यों का संचालन प्राकृतिक व्यवस्था को तो नष्ट करता ही है, मानवीय ध्वंस का आधार भी तैयार करता है। कानूनी प्रावधानों से यद्यपि डर तो पैदा हो सकता है किन्तु पर्यावरण संरक्षण डर से नहीं जागरूकता से संभव है। इसी जागरूकता और पर्यावरण संरक्षण के लिए हमें शस्य स्यामला की परिकल्पना को साकार करना होगा।

संदर्भ सूची

1. डब्लू सी0वाल्टन (1970)ग्राउण्ड वाटर रिसोर्स इवेल्यूशन, एम0पी0 ग्रोव हील, न्यूयार्क
2. मिश्र,डा0डी0के (2004) जनसंख्या, पर्यारण एवं विकास,ए0पी0एच0 पब्लिशिंग कार्पोरेशन, नई दिल्ली।
3. सिंह, रवीन्द्र (2001) पर्यावरण भूगोल, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
4. कुरुक्षेत्र, मासिक पत्रिका, अक्टूबर 2011।
5. मोहम्मद, नूर : भारत का भौतिक पर्यावरण, एन0सी0ई0आर0टी0, नई दिल्ली।
6. योजना, मासिक पत्रिका, अगस्त 2011।
7. विज्ञान प्रगति, मासिक पत्रिका, जून 2012।
8. मौर्य एस0डी0 (2006) संसाधन एवं पर्यावरण, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
9. नेगी,पी0 एस0 (200) पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण भूगोल, रस्तोगी पब्लिकेशन, मेरठ।
10. सिंह डॉ0 काशीनाथ सिंह, डॉ0 जगदीश सिंह (1997) आर्थिक भूगोल के मूल तत्व